www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २५

सोमवार २४ मार्च, '६९

अन्य पृष्ठों पर

दिल्ली का नशाबन्दी सम्मेलन

—सुन्दरलाल बहुगुणा ३०६

सर्वोदय-आन्दोलन किस ओर ?

—सम्पादकीय ३०७

चिन्तन-प्रवाह —सिद्धराज ढड्ढा ३०८

विनोबा-निवास से ३०९

गांधी का अनुयायी क्रान्ति चाहता है ३११

आन्दोलन के समाचार ३१२

परिशिष्ट

"गाँव की बात"

हमारे कार्यकर्ता जरा थोड़ी देर अपने काम से, अनुभव से, देह से, स्मरण से, आस-पास के समाज से, अपने चित्त से अलग होने का अभ्यास करें तो हम उस स्थान पर पहुँच सकते हैं, जो मूल स्रोत है, जहाँ से आगे दुनिया पैदा होती है, जहाँ दुनिया नहीं थी, देह नहीं थी और चित्त भी नहीं था, लेकिन कुछ था अवशेष। उसीको किसीने 'सत्' नाम दिया, किसीने 'असत्', तो कोई 'परमात्मा' भी कहते हैं। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : [illegible]

लोकतंत्र और जन्मजात लोकतंत्रवादी की विशेषता

लोकतंत्र का अर्थ है आम लोगों के भौतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक साधनों को सब लोगों की आम भलाई के कामों में जुटाने की कला और विज्ञान।[1]

वास्तविक लोकतंत्र का सबक आम लोग न किताबें पढ़कर हासिल करते हैं और न सरकारों से। दरअसल खुद हासिल किया गया अनुभव लोकतंत्र का सबसे अच्छा शिक्षण है।[2]

लोकतंत्र के बारे में मेरी धारणा है कि उसमें कमजोर-से-कमजोर आदमी को उतना ही सुअवसर रहेगा, जितना बलवान को।[3]

'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन' का मतलब है "बेमिलावट की अहिंसा," क्योंकि हिंसा के तरीकों के अपनाने का सीधा नतीजा होगा मुखालफत करनेवाले को दबाकर उसका खात्मा कर देना। इस ढंग से व्यक्तिगत आजादी कायम नहीं रहेगी।

जन्मजात लोकतंत्रवादी वह होता है, जो जन्म से ही अनुशासन का पालन करनेवाला हो। लोकतंत्र स्वाभाविक रूप में उसीको प्राप्त होता है, जो साधारण रूप में अपने को मानवी तथा दैवी सभी नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने का अभ्यस्त बना ले।···जो लोग लोकतंत्र के इच्छुक हैं, उन्हें चाहिए कि पहले वे लोकतंत्र की इस कसौटी पर अपने को कस लें। इसके अलावा, लोकतंत्रवादी को निःस्वार्थ भी होना चाहिए। उसे अपने या अपने दल की दृष्टि से नहीं, बल्कि एकमात्र लोकतंत्र की ही दृष्टि से सब कुछ सोचना चाहिए।···

व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मैं कदर करता हूँ, लेकिन आपको यह हर्गिज नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी ही है। सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढालना सीखकर ही वह वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। अबाध व्यक्तिवाद वन्य पशुओं का नियम है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयम के बीच समन्वय करना सीखना है। समस्त समाज के हित के खातिर सामाजिक संयम के आगे स्वेच्छापूर्वक सिर झुकाने से व्यक्ति और समाज, जिसका कि वह एक सदस्य है, दोनों का कल्याण होता है।[4]

मो. क. गांधी

(१) 'हरिजन' : २७ मई, '३९, पृष्ठ–१४२ (२) 'हरिजन' : १८ जनवरी, '४८ पृष्ठ–५१९
(३) 'हरिजन' : १८ मई, '४०, पृष्ठ–१२९ (४) 'हरिजन' : २७ मई, '३९, पृष्ठ–१४३

www.vinoba.in

२ अक्तूबर '६९ से दिल्ली में अहिंसक पद्धति से सीधी कार्यवाही का निश्चय

गांधी स्मारक निधि और अ० भा० नशाबंदी परिषद् के तत्वावधान में ९ और १० मार्च को दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय कन्वेंशन ने गांधी जन्म-शताब्दी के दौरान पूर्ण नशाबंदी के लिए एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया है। कन्वेंशन में सारे देश से लगभग २०० प्रतिनिधियों ने, जिनमें राजनैतिक और धार्मिक नेता, समाज-सेवक, रचनात्मक कार्यकर्ता, कानूनविद एवं चिकित्सक शामिल थे, भाग लिया। कन्वेंशन का उद्घाटन भूतपूर्व कांग्रेस-अध्यक्ष श्री के० कामराज ने तथा अध्यक्षता खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष श्री उ० न० ढेबर ने की।

कन्वेंशन में मुख्य चर्चा नशाबंदी-कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में रही। इस दिशा में श्री गोकुल भाई भट्ट के नेतृत्व में पिछले साल हुए राजस्थान के शांतिमय धरना आन्दोलन की सफलता से कन्वेंशन में भाग लेनेवालों को खूब प्रेरणा मिली। श्री गोकुल भाई की अध्यक्षता में गठित सत्याग्रह उपसमिति ने अपनी सिफारिशों में कहा है कि :

(१) गांधी-शताब्दी वर्ष में नशाबंदी-कार्यक्रम गांधी-विचार के अनुसार चलाया जाना चाहिए। गांधीजी ने नशाबंदी को स्वराज्य-प्राप्ति का एक प्रमुख कार्यक्रम बताया था, और नशाबन्दी को स्वाधीन भारत की सरकार की जिम्मेदारी के रूप में प्रतिपादित किया था।

(२) कांग्रेस-महासमिति के गोआ-अधिवेशन में पारित नशाबन्दी का प्रस्ताव असंतोषप्रद है। केन्द्र-सरकार एवं प्रधान मंत्री से आग्रह किया जाता है कि आगामी १५ अगस्त १९६९ तक नशाबन्दी के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नीति की घोषणा करें।

यदि उस दिन तक राष्ट्रीय नीति की घोषणा न की गयी तो ११ सितम्बर, '६९ (विनोबा-जयन्ती) से सामूहिक सत्याग्रह का आवाहन किया जायगा। समिति २ अक्तूबर '६९ से दिल्ली में भी सत्याग्रह करने का सुझाव देती है।

(३) धार्मिक स्थानों, शैक्षणिक संस्थाओं, हरिजन-बस्तियों और मजदूर-क्षेत्रों से शराब की दुकानें अविलम्ब हटायी जायँ। एक गाँव की ६० प्रतिशित जनता यदि शराब की दुकान के विरुद्ध हो तो दुकान हटायी जाय। जिस तहसील या जिले की ६० प्रतिशत पंचायतों द्वारा शराब की दुकानों का विरोध हो, वहाँ से शराब की सभी दुकानें हटा दी जानी चाहिए।

(४) शराब के कारखाने खोलने के लिए दिये गये लायसेंस रद्द किये जायँ।

(५) पूर्ण नशाबन्दी का कार्यक्रम अगर अमल में नहीं लाया गया तो अहिंसक सीधी कार्यवाही की जानी चाहिए।

एक शराबबंदी सत्याग्रह समिति का गठन किया गया है, जिसमें सर्वश्री गोकुल भाई भट्ट, प्रकाशवीर शास्त्री, डा० सुशीला नैय्यर, ओमप्रकाश त्रिखा, मनुभाई पटेल, करण भाई, यशोधरा दासप्पा एवं के० केलप्पन् प्रभृति सदस्य हैं।

सत्याग्रह उपसमिति के सदस्य प्रधान मंत्री, उद्योग-मंत्री, कांग्रेस-अध्यक्ष एवं राज्यों के मुख्यमंत्रियों से मिलकर उन्हें सीधी कार्यवाही के ब्योरे से अवगत करायेंगे।

कानून और नशाबन्दी

डा० जीवराज मेहता की अध्यक्षता में कानून और नशाबन्दी के सम्बन्ध में गठित उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भारत सरकार संविधान के अनुच्छेद ४७ के अन्तर्गत मद्य-निषेध कानून बनाये। यदि इसमें कोई संवैधानिक कठिनाई हो तो संविधान में संशोधन किया जाय। जिन राज्यों ने नशाबंदी को ढील दी है, उनके इस आशय के कानूनों को उच्च न्यायालय में चुनौती दी जाय। मद्य-निशेध कानूनों की अवहेलना करनेवालों के विरुद्ध त्वरित कार्यवाही करने हेतु पुलिस को शराबी की साँस और खून की जाँच करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। शराबबन्दी कानून भंग करनेवालों को कम-से-कम ६ मास का कारावास-दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

सरकार कर्मचारियों के सेवा-नियमों में कर्मचारियों द्वारा शराब पीने पर पाबंदी लगायी जानी चाहिए।

सार्वजनिक स्थानों पर शराब के विज्ञापनों पर रोक लगायी जाय।

ऐसे मोटर-चालकों का, जो मोटर चलाने से पूर्व और उस दौरान शराब पीयें, मोटर चलाने का लायसेंस ६ मास के लिए समाप्त किया जाना चाहिए।

शराब पीनेवालों की बीमा-पालिसियों पर २५ प्रतिशत अधिक प्रीमीयम लिया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य और शराब

स्वास्थ्य पर शराब के कुप्रभाव के सम्बन्ध में चण्डीगढ़ के डा० छुट्टानी ने अपना लेख प्रस्तुत किया और श्री रसिकलाल पारीख की अध्यक्षता में गठित उपसमिति ने अपनी सिफारिशों में कहा है कि स्वास्थ्य सेवा संगठन और मुख्यतः प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्रों और परिवार-नियोजन-केन्द्रों का उपयोग जनता में शराब के कुप्रभावों का प्रचार करने के लिए किया जाना चाहिए। इस प्रकार का प्रचार मुख्यतः देहाती और पर्वतीय तथा समुद्रतटीय क्षेत्रों में किया जाना चाहिए।

भारतीय चिकित्सा संघ डाक्टरों से शराब न पीने की अपील करे।

यह धारणा कि पर्वतीय क्षेत्रों में शराब पीना उपयोगी है, निराधार है, और सैनिक-अधिकारियों से यह प्रार्थना की गयी है कि पहाड़ी स्थानों में सैनिकों को मुफ्त शराब के स्थान पर सूखे मेवे और डिब्बे का दूध आदि देने का प्राविधान भी रखें।

मोरारजी का आह्वान

कन्वेंशन का समारोप करते हुए उप-प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने शराबबंदी के लिए सत्याग्रह के निश्चय का स्वागत करते हुए कहा कि एक बार जो कदम उठाया जाय वह लक्ष्य-प्राप्ति तक रुकना नहीं चाहिए।

—सुन्दरलाल बहुगुणा

www.vinoba.in

सर्वोदय-आन्दोलन किस ओर ?

दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले एक प्रमुख हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के दिनांक १९-३-'६९ के प्रभात-संस्करण में श्री जगतराम साहनी का एक लेख छपा है—"सर्वोदय आन्दोलन किस ओर !" पिछले कुछ दिनों से—खासकर सन् १९६७ के महानिर्वाचन के परिणामस्वरूप प्रकट हुई नयी परिस्थितियों के बाद से—अखबारवालों की निगाहें सर्वोदय आन्दोलन की ओर भी उठने लगी हैं। यह एक संतोष की बात मानी जा सकती है, वर्ना सर्वोदय-आन्दोलन चाहे जिस ओर हो, इसकी ओर ध्यान देने की अखबारवालों को जरूरत और फुरसत कहाँ थी ?

लेकिन दुःख तो यह देखकर होता है कि किसी विषय पर कलम चलाने से पूर्व उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करना शायद अधिकांश अखबारी लेखक आवश्यक नहीं मानते। अखबारों में छपी अधूरी खबरें, इधर-उधर से सुनी-सुनाई बातें सर्वोदय-आन्दोलन को परखने के लिए वे पर्याप्त मानते हैं।

फिर भी, निगाहें इधर मुड़ी हैं, तो यह आशा की ही जा सकती है कि भारत की अखबारी दुनिया के लोग इस आन्दोलन को और अधिक करीब से देखने की कोशिश करेंगे, और इस प्रकार इस आन्दोलन को अधिकाधिक लोगों की नजरों के सामने ला सकेंगे।

यह तो स्वाभाविक ही है कि जब देश में हिंसात्मक उत्तेजना और उपद्रव उग्र से उग्रतर हो रहे हों, तो ऐसी परिस्थिति में अहिंसक क्रान्ति का उद्घोष करनेवाले सर्वोदय आन्दोलन से जनमानस में कुछ अपेक्षाएँ पैदा हों।

लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है कि सर्वोदय-आन्दोलन का क्रान्तिकारी दृष्टिकोण लोगों के सामने स्पष्ट नहीं है। वे इसे अभी तक एक लोककल्याणकारी प्रवृत्ति से भिन्न रूप में देख नहीं पाये हैं। इसके लिए जिम्मेदार सर्वोदय-आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ता कितने अंशों में हैं, इस आन्दोलन से अपेक्षा रखनेवाले कितने अंशों में हैं, और ऐतिहासिक परिस्थिति कितने अंशों में है, यह स्पष्ट कर पाना बहुत कठिन है।

वास्तव में क्रान्ति के लिए दो बुनियादी बातें अनिवार्य हैं : जीविका के साधनों के स्वामित्व का परिवर्तन, और संचालन तथा नेतृत्व की इकाई का परिवर्तन ! स्वामित्व और नेतृत्व, इन दो बुनियादी परिवर्तनों के आधार पर ही क्रान्ति सफलता की मंजिलें पूरी करती है। इसीके लिए मार्क्स ने 'सर्वहारा की तानाशाही' का उद्घोष किया था, लेकिन यह क्रान्ति का अधूरा उद्घोष था, इसीलिए सोवियत रूस या जनवादी चीन की क्रान्ति का काफिला इस समय एक नये प्रकार की प्रतिक्रान्ति के दलदल में फँसा दीखता है।

गांधी ने इस संकट की संभावना को अपनी दूरदृष्टि से परख लिया था, अतएव उन्होंने स्वराज्य के बाद नये भारत के निर्माण की जो कल्पना की थी, वह इस युग के जाने पहचाने लोकतांत्रिक या समाजवादी क्रान्ति के रास्ते से भी भिन्न एक नया मार्ग था। गांधी के बाद विनोबा ने तेलंगाना की घटना में इतिहास का संकेत देखा और इस नयी क्रान्ति के लिए निकल पड़े। १८ अप्रैल '५१ से लेकर आज तक विनोबा निरन्तर उसी क्रान्ति की आराधना में लगे हैं। उस क्रान्ति का बुनियादी स्वरूप क्या है ? क्या स्वामित्व और नेतृत्व के सवाल पर सर्वोदय-आन्दोलन कुछ सक्रिय है ?

सर्वोदय-आन्दोलन इस समय ग्रामदान से प्रदेशदान तक की बात कर रहा है। बिहार में प्रदेशदान की मंजिल अब बहुत दूर नहीं। क्या भूमिका है इसके पीछे ? साम्यवादी क्रान्तियों की सीमाओं को सामने रखकर ही सर्वोदय-आन्दोलन ने अपनी बुनियाद निर्धारित की है : स्वामित्व गाँव का—न सरकार का, न व्यक्ति का; और नेतृत्व गाँव का—न दल का न तानाशाह का।

सर्वोदय-आन्दोलन इन दो बुनियादी परिवर्तनों के आधार पर नये समाज की रचना का स्वप्न देख रहा है। और सिर्फ स्वप्न ही नहीं देख रहा है, पूरी एकाग्रता के साथ उसकी तैयारी में शक्ति भर जुटा है। यह ठीक है कि सर्वोदय-आन्दोलन देश में व्याप्त बहुविध अन्यायों के खिलाफ सत्याग्रह नहीं करता, क्योंकि वह अन्यायों को टुकड़ों में हल करना असम्भव मानता है; क्योंकि वह सत्याग्रह के पूर्व उस सवाल पर लोक-चेतना को पूरी तरह जगाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य मानता है; क्योंकि वह देख रहा है कि आंशिक प्रश्नों को लेकर सत्याग्रह या प्रतिकार की जो कोशिशें होती हैं, उनमें जनता की चेतना का नहीं, उन्माद का सहारा लिया जाता है, चेतना को जगाने का धैर्य कहीं है नहीं, लोगोंको राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए मौका चूक जाने के खतरे दीखते हैं ! ऐसे वातावरण में सर्वोदय-वालों ने अगर फुटकर प्रतिकारों की ओर ध्यान न देकर स्वामित्व और नेतृत्व के बुनियादी परिवर्तनों के लिए जन-चेतना जगाने में अपने को एकाग्र बनाये रखा है तो क्या यह गलत है ? जिस लोकतंत्र के ऊपर खतरा आज दिखाई दे रहा है उसको बचाने के लिए आखिर शक्ति कहाँ से प्राप्त होगी ? राजनीतिक दलों से ? सेना और प्रशासन के तंत्र से ? या लोक-चेतना से ? और लोक-चेतना को जगाने तथा उसे संगठित करने के लिए कुछ बुनियादी आधार चाहिए या वह बिना किसी आधार के ही हो जायगा ? सर्वोदय-आन्दोलन देश के हर गाँव में एक-एक व्यक्ति तक पहुँचकर यह चेतना जगाने का ही काम तो कर रहा है ! दूसरे कौन हैं जो देश की जनता के पास जाकर उनकी सुप्त शक्ति को जाग्रत करने की चेष्टा कर रहे हैं ?

सर्वोदय-आन्दोलन उसी ओर जा रहा है जिस ओर जाकर देश में बुनियादी क्रान्ति लाना सम्भव हो सकेगा, लोकतंत्र को खतरे से मुक्त किया जा सकेगा और समाजवाद के सपने को साकार किया जा सकेगा। साथ ही सर्वोदय-आन्दोलन अपील कर रहा है देश के प्रबुद्ध नागरिकों से, कि समस्याओं का हल टुकड़ों में ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा, विकास आंशिक तौर पर नहीं हो सकेगा, समस्याओं को हल करने के लिए एक समग्र क्रांति की त्वरित आवश्यकता है। आइए, इस काम की जिम्मेदारी 'सर्वोदयवालों' की ही न मानकर आप सब इस क्रान्ति की पूर्वतैयारी में एकाग्रता के साथ जुट जाइए !•

www.vinoba.in

* जनहित-संरक्षण के उद्घोष : पोषक या शोषक ?
* लोकमत की अवहेलना करनेवाली लोकतांत्रिक राजनीति...

आज की राजनीति में सत्ता हासिल करने या उसे बनाये रखने के लिए लोगों के वोट प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है। वोट प्राप्त करने के लिए लोगों का आकर्षण अपनी ओर बनाये रखना होता है। इसका एक आसान तरीका यह है कि लोगों के सामने ऐसी तस्वीर खड़ी की जाय कि उनके अमुक हित खतरे में हैं, और फिर अपने को, अपनी पार्टी को, या खुद सरकार में हों तो अपनी सरकार को, उन हितों का रक्षक और समर्थक घोषित किया जाय। ये हित कभी वास्तविक भी हो सकते हैं, लेकिन अधिकांश में वे काल्पनिक या बनावटी होते हैं, या ऐसे होते हैं जो अखबारी प्रचार के द्वारा जनमानस पर अंकित किये जाते हैं। ऐसे हित अक्सर जाति, सम्प्रदाय, धर्म, भाषा, भौतिक साधन या सुविधाओं आदि से सम्बन्धित संकुचित स्वार्थों के नाम पर उभाड़े जाते हैं और इस प्रकार वे जनता को विभक्त करने, उसमें एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना पैदा करने और उसके दिलों को तोड़ने का साधन बन जाते हैं।

महाराष्ट्र-मैसूर का सीमा-विवाद इसी तोड़नेवाली राजनीति का एक नमूना है। सिवा उन राजनैतिक नेताओं के, जिन्हें इस या उस राज्य में अपनी नेतागिरी सुरक्षित लगती हो, या उन व्यापार-धन्धेवालों के, जिन्हें इधर या उधर ज्यादा मुनाफा या सुविधा नजर आती हो, महाराष्ट्र या मैसूर के लाखों-करोड़ों आम लोगों के लिए इसमें क्या फर्क पड़ता है कि बेलगाँव शहर और आस-पास के कुछ गाँव इस प्रदेश में रहें या उसमें? पर दुर्भाग्य से इस सवाल ने ऐसा रूप धारण कर लिया है जैसे इसीके फैसले पर महाराष्ट्र या मैसूर की जनता का भाग्य निर्भर करता हो। लोगों की भावनाएँ ऐसी उभाड़ दी गयी है कि लोग अपने इस काल्पनिक हित की रक्षा के लिए जान भी हथेली पर रखकर सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं। अभी-अभी बम्बई की सड़कों पर ५५ व्यक्तियों की जानें इसी प्रश्न को लेकर गयीं, करोड़ों की सम्पत्ति बरबाद की गयी, और इस सारे भौतिक नुकसान से भी भयंकर बात यह कि देश की आम जनता के मनों में एक-दूसरे के प्रति—महाराष्ट्री और गैर-महाराष्ट्री आदि के नाते—द्वेष और वैमनस्य का जहर फैल गया। और यह सब किसलिए कि अगले किन्हीं चुनावों में बाल ठाकरे और उनके साथियों को, या मुख्य मंत्री नाईक और उनकी पार्टी को महाराष्ट्र के हितों के समर्थक के नाते तथा वीरेन्द्र पाटिल या निजलिंगप्पा आदि को मैसूर के हितों के रक्षक के नाते वोट मिल जायँ। दोनों ओर की जनता जहरीले प्रचार का शिकार बनकर सुध-बुध खो देती है। वह दंगा-फसाद करना न चाहे तब भी परिस्थिति ऐसी विस्फोटक बन गयी होती है कि उसमें चंद भाड़े के गुण्डे दंगा खड़ा कर देने के लिए काफी होते हैं।

जयप्रकाश नारायण ने सुझाया है कि प्रधान मंत्री विभिन्न पार्टियों के नेताओं को बुलावें और ऐसे विवादों को सुलझाने के लिए कुछ सर्वसम्मत सिद्धान्त स्थिर करें। प्रदेशों के बीच की सीमाओं के प्रश्न, नदियों के पानी और बिजली आदि के बँटवारे के प्रश्न आखिरकार ऐसे प्रश्न नहीं हैं, जो किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर न सुलझाये जा सकते हों—अगर वे सचमुच में वास्तविक हों। इसलिए प्रधान मंत्री को जयप्रकाश नारायण के सुझाव पर अमल करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। पर मुश्किल यह है कि जिन विवादों की बुनियाद में ही राजनीति हो, जहाँ उन विवादों की आग का सुलगते रहना ही अपने हित में माना जाता है, वहाँ ऐसा सीधा और सरल नुक्सा क्योंकर काम में लाया जा सकता है? इसीलिए तो जैसा जयप्रकाशजी ने कहा है, महाराष्ट्र-मैसूर विवाद का फैसला करने के लिए जो 'महाजन-कमीशन' नियुक्त किया गया था उसके सामने भी कोई निश्चित और स्पष्ट कार्य-पद्धति तथा मुद्दे नहीं रखे गये। नतीजा हमारे सामने हैं। 'महाजन-कमीशन' का फैसला निश्चित सिद्धान्तों पर होने के बजाय रुख देखकर किया गया है, और वह फैसला स्वयं ही दोनों प्रदेशों के बीच विवाद का कारण बन गया है। क्या लोग अब भी राजनीति के विनाशकारी अभिनय को समझकर सावधान नहीं होंगे?

× × ×

आजादी हासिल होने के तुरन्त बाद गांधीजी ने कांग्रेस को जो सलाह दी थी कि उसे एक राजनैतिक दल के रूप में सत्ता के पीछे न जाकर लोक-सेवा के काम में लगना चाहिए, उस सलाह के पीछे रही हुई दूरदर्शिता और उसका औचित्य दिन-ब-दिन स्पष्ट होता जा रहा है। विदेशी साम्राज्य की गुलामी से मुक्त होने के संघर्ष में कांग्रेस भारतीय जनता का संगठित मोर्चा थी। साठ बरस के इस लम्बे संघर्ष में एक के बाद दूसरी पीढ़ी के नेताओं तथा आम जनता के द्वारा इसके तत्वावधान में किये गये त्याग और बलिदान के कारण कांग्रेस भारत के करोड़ों लोगों के आदर, श्रद्धा और विश्वास की तथा दुनिया के स्वातंत्र्य-प्रिय लोगों की प्रशंसा की पात्र बन गयी थी। गांधीजी चाहते थे कि इस "पूँजी" का अधिक-से-अधिक उपयोग भारतीय समाज और मानव-जाति की सेवा के लिए हो, जो सत्ता की होड़ में पड़ जाने पर संभव नहीं था। पर दुर्भाग्य से यह नहीं हो सका। कांग्रेस ने गांधीजी के सुझाव पर विचार भी नहीं किया और फलस्वरूप कई पीढ़ियों की तपस्या की आग में शुद्ध, और पैना बना हुआ हथियार जल्दी ही भोथरा और निकम्मा हो गया।

सत्ता को भी अगर सेवा का ही साधन माना जाय, स्वार्थ-सिद्धि का नहीं, और जरूरी होने पर उसे छोड़ने की भी तैयारी हो, तबतक तो सत्ता के मार्ग में भी प्रतिष्ठा बनी रह सकती है। पर ऐसा मुश्किल से

सम्भव होता है। इसके अलावा, खासकर आज के केन्द्रित युग में, सत्ता का स्वधर्म ही ऐसा हो गया है कि सत्ता के स्थान पर बने रहने के लिए सिद्धान्तों और नैतिकता से उत्तरोत्तर अधिकाधिक समझौता करते रहना पड़ता है। आजादी के बाद पिछले बीस बरस का कांग्रेस का इतिहास इसका ज्वलन्त उदाहरण है। पुरानी प्रतिष्ठा और जवाहर लाल नेहरू के व्यक्तित्व के कारण कुछ बरसों तक बात ढकी रही पर दिनोंदिन यह साफ होता जा रहा है कि कांग्रेस के "नेताओं" के सामने सिवा इसके कोई उद्देश्य नहीं है कि जैसे भी हो अपनी सत्ता कायम रखी जाय। देश या जनता के हित की बात तो दूर, अब तो दल के या पार्टी के हित की बात भी नहीं रही, सिर्फ व्यक्तिगत पद, प्रतिष्ठा, या सीधे शब्दों में कहे तो, स्वार्थ की बात शेष रह गयी है। मध्यावधि चुनाव के बाद बंगाल और बिहार में जो कुछ हुआ, तथा हो रहा है, वह देश और जनतंत्र के हित में तो है ही नहीं, स्वयं कांग्रेस पार्टी के लिए भी ये घटनाएँ घातक साबित होने-वाली हैं। पिछले साल बंगाल के राज्यपाल ने जिस भद्दी जल्दबाजी और फूहड़ तरीके से तत्कालीन संयुक्त-मोर्चा सरकार को भंग किया तथा कांग्रेस-समर्थित अल्पमत की सरकार को पदारूढ़ किया उसकी भर्त्सना उस समय सब विचारवान लोगों ने की थी। मध्यावधि चुनाव में फिर जनता ने भी राज्यपाल की इस कार्रवाई के खिलाफ अपनी राय जाहिर की। चुनाव की मौजूदा पद्धति में कई दोष हैं, और उसमें जनमत प्राप्त करने के लिए गलत तरीकों के काम में लिये जाने की बहुत गुञ्जाइश है, यह अलग बात है। पर चुनाव में जीतने पर जनमत को अपने पक्ष में बताने की आशा अगर कांग्रेस ने रखी थी तो परिणाम उल्टा आने पर उसके नतीजे से बचने की कोशिश करना कांग्रेस के लिए उचित नहीं था। झूठी प्रतिष्ठा के मोह में न पड़कर मध्यावधि चुनावों के बाद जीते हुए पक्ष की माँग का सम्मान करके केन्द्रीय सरकार को उसी समय बंगाल के राज्यपाल को हटा लेना चाहिए था।

बिहार में तो कांग्रेस ने सत्ता में आने के लिए जो कुछ किया वह और भी शर्मनाक तथा अनैतिक है। एक से अधिक बार स्वयं कांग्रेस ने यह माना और घोषित किया है कि दल बदलनेवाले लोगों को मंत्री-मंडल में लेकर इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। बिहार में राजा रामगढ़ ऐसे लोगों में हैं, जिन्होंने एक बार नहीं, बार-बार दल-बदल कर चुनाव को मजाक बना दिया है। इतना ही नहीं, उन पर अपने पद का दुरुपयोग करने के आरोप की उच्च न्यायालय ने भी पुष्टि की है। पर राजा रामगढ़ को मंत्री-मंडल में शामिल किये बिना कांग्रेस के लिए अपने दल की सरकार बनाना संभव नहीं था। इसलिए सब सिद्धान्तों को ताक पर रखकर भी ऐसे व्यक्ति को मंत्रि-मंडल में ले लेना इस बात का प्रमाण है कि स्वयं कांग्रेस, या कम-से-कम उसके नेता, लोकतंत्र को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के साधन से ज्यादा कुछ नहीं मानते। पिछले साल बंगाल में प्रदर्शित इस मनोवृत्ति का जनता ने मध्यावधि चुनाव में जवाब दिया, पर उससे भी कांग्रेस ने कोई सबक नहीं सीखा। इस तरह बार-बार जनमत की, लोकतांत्रिक परम्पराओं की और सामान्य नैतिकता की अवहेलना करना लोकतंत्र का, और अतः देश और जनता का, द्रोह नहीं तो और क्या है? ऐसा तो है नहीं कि जो कांग्रेस के नेता यह सब कर रहे हैं वे इतना नहीं समझते होंगे कि चुनावों द्वारा अभिव्यक्त जनमत के साथ इस तरह खिलवाड़ करने से वे जनतंत्र पर से लोगों का विश्वास समाप्त करने में सहायक बन रहे हैं!

विनोबा-निवास से :

आश्रमों से अपेक्षा

"आज पाँच मार्च है। सात साल पूर्व आज के दिन असम में मैत्री-आश्रम की स्थापना हुई थी। ठीक डेढ़ साल असम की यात्रा करने के बाद ५ सितम्बर, '६२ को हम पाकिस्तान-यात्रा पर वहाँ से चले गये थे।" शाम के समय सहज भाव से बाबा ने अपने आसपास बैठे २०-२५ लोगों को सम्बोधित करते हुए उपरोक्त बातें कहीं, और असम की स्त्री-शक्ति का गौरव करने लगे। बोले, "अमलप्रभा बाईदेव एक संपन्न, विद्वान की कन्या हैं, ब्रह्मचारिणी हैं, और उनके आसपास असम में स्त्री-शक्ति के जागरण की परंपरा ही बन गयी है। वहाँ की हेम भराली और लक्ष्मी को हमने सुझाया और वे १२ वर्ष का संकल्प लेकर भारत-यात्रा के लिए निकल पड़ीं। पंजाब की निर्मला और सिंध की रोझवानी, ये दोनों भी शामिल हो गयीं। यह लोक-यात्रा अभी पंजाब में है। बहुत अच्छा अनुभव आ रहा है। यह यात्रा मैत्री-आश्रम का ही एक अंग है।"

बाबा ने कहा—'इस जमाने में हमें गाँव-गाँव पैदल घूमते देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। हमें जमीन प्राप्त करनी थी, तो जमीन पर ही चलना हमने ठीक समझा। इससे गहरा जनसंपर्क भी सधा। बाबा चलता जमीन पर था, परन्तु सोचता जगत् का था। मैत्री-आश्रम अंतर्राष्ट्रीय प्रेम बढ़ानेवाला एक केन्द्र बने, यह हमारी भावना थी। आश्रम ऐसे ही स्थान पर है, जहाँ से हवाई अड्डा एकदम नजदीक है, और दुनिया के किसी भाग से वहाँ पहुँचना सहज है। हमने सोचा था कि कुछ लम्बे काल के बाद इस आश्रम को महत्त्व आयेगा। देखते हैं कि स्थापना के बाद इस छोटे-से सात वर्ष के काल में ही वहाँ कुछ अच्छे काम हो गये। भारत-चीन मैत्री-यात्रा का तीन महीने वहाँ महत्त्व का पड़ाव रहा। आश्रमवालों को वहाँ की सैनिक-छावनी का स्नेह मिल रहा है। सेना के लोग महसूस करते हैं कि सेना के साथ-साथ शांति रखने में इस मैत्री-स्थान का भी बड़ा उपयोग है। अभी वहाँ दक्षिण-पूर्व एशिया के भिन्न-भिन्न भागों से आये २५-५० लोगों का एक शिविर हुआ था। इस तरह इस आश्रम को एक इंटर-नेशनल महत्त्व प्राप्त हुआ है।" →

→ बाबा ने आज मैत्री-आश्रम की स्थापना का स्मरण करके बोधगया के समन्वयाश्रम, पठानकोट के प्रस्थान-आश्रम, वंगलौर के वल्लभ-निकेतन, इन्दौर के विसर्जन-आश्रम, पवनार (वर्धा) के ब्रह्मविद्या-मन्दिर की भी याद की। और यह इच्छा व्यक्त की कि भारत में और भी कुछ आश्रम हैं; और खादी तथा रचनात्मक कार्य के कुछ मुख्य केन्द्र हैं; ये सब स्थान सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के लिए आश्रम-स्थान हों, यहाँ अध्ययन, भवद्भक्ति और व्रत-निष्ठा का दर्शन हो। क्षेत्र में काम करते-करते बीच-बीच में वहाँ जाकर कार्यकर्ता रहें और ताजे होकर फिर काम में लग जायँ।

बाबा ने बताया कि मुहम्मद साहब की भी ऐसी आज्ञा थी, जो उन्होंने 'कुरान-सार' में से पढ़कर सुनायी : "श्रद्धावानों के लिए उचित नहीं कि सबके सब कूच कर जायँ। उनके हर समुदाय में एक भाग क्यों न कूच करे! शेष लोग धर्म का ज्ञान प्राप्त करें, जिससे कि ये लोग अपने समाज को, जब कि वह युद्ध से लौटकर आये, सावधान करें, जिससे कि वह समाज धर्म के विषय में सचेत रहें।"

भागलपुर : दिनांक ५-३-'६९

तरुण शान्ति-सेना सम्मेलन तिथियों में परिवर्तन

बम्बई में आयोजित होनेवाला तरुण शांति-सेना का राष्ट्रीय सम्मेलन अब १७ व १८ मई १९६९ को श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में भवन-कालेज, अंधेरी में सम्पन्न होगा।

"नेशनल सर्विस कोर" का प्रथम शिविर

"एन० सी० सी०" के विकल्प के रूप में नव-निर्मित योजना "नेशनल सर्विस कोर" के प्रथम शिविर का आयोजन दिनांक १२ फरवरी से २१ फरवरी तक गांधी-शताब्दी की जनसम्पर्क उपसमिति के सहयोग से सेवाग्राम में किया गया। उद्घाटन काकासाहब कालेलकर द्वारा सम्पन्न हुआ। शिविर में देश भर के विश्वविद्यालयों से ३७८ छात्र-छात्राएँ तथा १३० प्राध्यापकों ने भाग लिया। इस प्रकार शिविरार्थियों की कुल संख्या ५०० से अधिक रही। "नेशनल सर्विस कोर" के भावी स्वरूप के संदर्भ, संगठन, कार्यक्रम आदि की चर्चा हुई। —अमरनाथ

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

"आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत संघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहाँ एक ओर यह है कि जिन थोड़े-से अमीरों के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कहीं बड़ा अंश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊँचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय, वहाँ दूसरी ओर यह है कि अध-भूखे और नंगे रहनेवाले करोड़ों का स्तर ऊंचा किया जाय। अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की यह चौड़ी खाईं जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नहीं सकता। स्वतंत्र भारत में, जहाँ कि गरीबों के हाथ में उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि देश के बड़े-बड़े अमीरों के हाथ में, वैसी विषमता तो एक दिन के लिए भी कायम नहीं रह सकती, जैसी कि नयी दिल्ली के महलों, और यहीं नजदीक की उन सड़ी-गली झोंपड़ियों के बीच पायी जाती है, जिनमें मजदूर-वर्ग के गरीब लोग रहते हैं। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन होकर ही रहेगी, अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नहीं करते और सबकी भलाई के लिए उसमें हिस्सा नहीं बंटाते।"

देश में दंगे-फसाद और खून-खराबी का वातावरण बढ़ता जा रहा है। इसमें आर्थिक, सामाजिक विषमता भी बड़ा कारण है। गांधीजी की उक्त वाणी और चेतावनी आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग, विशेषतः अमीर, समय के संकेत को पहचानेंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति), डुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

www.vinoba.in

गांधी का अनुयायी क्रान्ति चाहता है

['गांधी का अनुयायी क्रान्ति चाहता है' शीर्षक के अन्तर्गत अमेरिका से प्रकाशित विश्वप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' के २३ दिसम्बर, '६८ के अंक में उसके नयी दिल्ली स्थित संवाददाता की एक विशेष रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उक्त रिपोर्ट का मुख्य अंश आगे प्रस्तुत है। —सं०]

अपनी श्रद्धाभरी वाणी में विद्यालय के एक प्राचार्य ने कहा कि उनके विद्यालय के छात्र गांधीजी के जीवन का अध्ययन कर रहे हैं। प्राचार्य की यह बात विनोबा के दाहिने कान के पास दो बार जोर से कही गयी (क्योंकि वे दाहिने कान से ही कुछ सुन पाते हैं), फिर भी वे खामोश ही रहे।

विनोबा के शरीर पर चादर लिपटी हुई थी और सिर पर हरे रंग की कान ढँक लेनेवाली टोपी थी, इसलिए उनकी सफेद दाढ़ी, नाक और नाक पर टिके चश्मे के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता था। कुछ देर के बाद दाढ़ी कुछ हिली और तब संगीत भरी वाणी में कहा—"यूक्लिड की जीवनी पढ़ने का कोई उपयोग नहीं है। सबसे मुख्य बात है ज्योमेट्री सीखना। गांधी के साथ भी यही बात है। उनका विचार उनके 'व्यक्ति' से बड़ा था।"

विनोबा भारत के लोगों को बीस वर्षों से समझा रहे हैं कि गांधी का विचार यह माँग करता था, और आज भी कर रहा है, कि भारत के गरीब और जातिवाद से दबे-पिसे गाँवों में एक अहिंसक सामाजिक क्रान्ति हो। विनोबा जोर देकर कहते हैं कि गांधीजी ने जो आजादी अंग्रेजों से हासिल की वह अहिंसक क्रान्ति द्वारा ही वास्तविक स्वतंत्रता में बदल सकेगी।

इन दिनों भारत गांधी-जन्म-शताब्दी के समारोह में व्यस्त है। लेकिन ७४ वर्ष के कृशकाय विनोबा, जो राजनीतिक क्षेत्र के अधिकांश जागरूक भारतीयों द्वारा प्रायः उपेक्षा या असंतोष की नजर से देखे जा रहे हैं, अपनी क्रान्ति को पूर्ण करके शताब्दी-समारोह मनाने की तैयारी में अत्यन्त व्यस्त हैं।

विनोदपूर्ण और अपनी आँखों में लगभग बच्चों जैसी चमक लाकर विनोबा अपनी हरी टोपी को उंगलियों से दिखाकर उसे शान्ति-सेना के सुप्रीम कमाण्डर की पोशाक कहते हैं। वास्तव में वे हरे रंग की टोपी इसलिए पहनते हैं, ताकि प्रकाश की चमक से उनकी आँखों का बचाव हो सके और कान के पर्दे तीखी ध्वनि-तरंगों के कारण होनेवाली तकलीफ से बच सकें।

विनोबा के विनोद के पीछे कठोर संकल्प-शक्ति का सम्बल है। जब वे कहते हैं कि वे बिहार जैसे पिछड़े प्रदेश को जीत लेना चाहते हैं और उसके बाद समूचे भारत को, तो वे मजाक नहीं करते। बिहार में वे ३ वर्षों से काम में लगे हैं।

विनोबा ने "भूदान" माँगकर अपना कार्य प्रारम्भ किया। वे गाँव के भूमिवानों से जमीन माँगते थे, ताकि उसे भूमिहीनों और निचली जाति के लोगों में बाँट सकें।

सन् १९५१ से 'भूदान" माँगना प्रारम्भ करके भारत के नीचे-ऊँचे भूभागों में घूमते हुए विनोबा ने ४४ हजार मील की पदयात्रा की। पदयात्रा में उन्होंने ४० लाख एकड़ से अधिक भूमि भूदान में प्राप्त की। भूदान में प्राप्त ज्यादातर भूमि पहाड़ी, कंकरीली, पथरीली और खेती के अयोग्य थी। किन्तु उसमें से १० लाख एकड़ से अधिक भूमि भूमिहीनों में बाँटी जा चुकी है। भारत की कोई भी सरकार जितनी जमीन भूमिहीनों को दे सकती है, उससे यह कहीं ज्यादा है। लेकिन भूदान से क्रान्ति की ओर कदम नहीं बढ़ रहे थे, इसलिए विनोबा ने शीघ्रतापूर्वक "ग्रामदान" पर जोर देना शुरू किया। सन् १९६५ में उन्होंने ग्रामदान को गतिवान बनाने के लिए "ग्रामदान-तूफान" शुरू किया। अबतक बिहार राज्य के ७० हजार गाँवों में से ३३ हजार गाँवों का ग्रामदान हो चुका है।

विनोबा जोर देकर कहते हैं कि क्रान्ति की यह पहली अवस्था है। इसके बाद "बिहार का राज्यदान" होगा। जब "बिहार का राज्यदान" हो चुकेगा तब ग्रामसभाएँ राज्य की विधान-सभा में अपने खड़े किये गये प्रतिनिधि भेजेंगी। इससे आज के स्थापित सभी दलों की पराजय होगी।

संशय प्रकट करनेवाले कहते हैं कि विनोबा के पास सिर्फ संकल्प-पत्र हैं और उनका आशावाद है। विनोबा के कुछ कार्यकर्ताओं में उनके जैसी दूरदर्शी निष्ठा नहीं है. लेकिन वे यह मानकर आश्वस्त हैं कि ग्रामदान के बाद गाँव में विकास की जो कोशिशें होंगी, उसमें से असली और नयी शक्ति का उदय होगा। वे इतना अच्छी तरह जानते हैं कि एक न्यायपूर्ण समाज-रचना कहीं ऊपर से गाँव में नहीं ला सकती। वह नीचे गाँव में से ही स्थापित हो सकेगी।

श्री जयप्रकाश नारायण विनोबा के आन्दोलन में शरीक होने के पूर्व भारत के सबसे प्रशंसित समाजवादी थे। वे यह स्वीकार करते हैं कि कभी-कभी उन्हें भी संशय होता है, लेकिन फिर वे दृढ़ता के साथ कहते हैं—"रास्ते सिर्फ दो ही हैं—विनोबा या माओत्से तुङ्ग के।"

पिछले कुछ वर्षों से विनोबा को पदयात्रा बन्द करनी पड़ी। लेकिन वे अभी भी एक मोटर द्वारा घूम रहे हैं। उन्होंने जान-बूझकर भाषण देना बन्द कर दिया है, क्योंकि उनका इस आध्यात्मिक निष्ठा में विश्वास है कि स्वार्थ-रहित कर्म सबसे प्रभावपूर्ण कर्म होता है और विकर्म सबसे बड़ा निःस्वार्थ कर्म है।

विनोबा से पूछा गया कि वे जो करना चाहते हैं उसे क्या गाँव के लोग सचमुच समझ पाते हैं और ग्रामदान के प्रति जो विरोध की कमी है क्या वह इस कारण है कि उसके परिवर्तनकारी परिणाम अभी तक प्रकट नहीं हो सके हैं। विनोबा ने उत्तर दिया—"किसीने कहा है कि गाँववालों के पास युग-युगों की बुद्धिमत्ता इकट्ठी है। अमेरिका की जनता लगभग ३०० वर्ष पुरानी है, लेकिन भारत के गाँवों की जनता १० हजार वर्ष पुरानी है। वह अनुभवी है। मैं मानता हूँ कि मैं जो करना चाहता हूँ, उसे वह समझती है।"०

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ २४-३-'६९ रजिस्टर्ड नम्बर एल. ३५४ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर पी ३४

बिहार का नौवाँ जिलादान-धनबाद-घोषित

बिहारदान की मंजिल अब दूर नहीं रही

भागलपुर : १३ मार्च '६९। आज बिहार प्रदेश का नौवाँ जिलादान-धनबाद-जिला सर्वोदय-मण्डल के संयोजक हरिशंकर लाल द्वारा विनोबाजी को समर्पित किया गया। कोयला-खदानों के लिए प्रसिद्ध धनबाद जिले ने बिहार को प्रदेशदान के बहुत निकट ला दिया है। निश्चित ही विविध प्रतिकूलताओं के बावजूद जिलादान का काम पूर्ण करनेवाले धनबाद के लोग इस पुरुषार्थ के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। जिलादान के आँकड़े निम्न प्रकार हैं :

कुल प्रखंड-संख्या		१०	
कुल पंचायत-संख्या		१९९	
कुल गाँव-संख्या		१,५६२	
चिरागी : १,४३९			
बेचिरागी : १२३			
ग्रामदान में शामिल गाँव		१,२८४	८९.२ प्रतिशत
कुल जनसंख्या		११,५८,३६३	
कोलियरी की जनसंख्या : ३,५६,७६१			
शहरी जनसंख्या : १,९१,११४			
गाँव की जनसंख्या : ६,१०,४८८			
ग्रामदान में शामिल जनसंख्या		४,९२,४३२	८०.६ प्रतिशत
कुल परिवार-संख्या		८२,५३२	
ग्रामदान में शामिल परिवार-संख्या		६२,६८९	७५.४ प्रतिशत
कुल जमीन का रकबा		३,३६,२३६	
ग्रामदान में शामिल रकबा		२,०१,७४१.६	६० प्रतिशत

भारत में जिलादान-ग्रामदान-प्रखण्डदान प्राप्ति

(१३ मार्च '६९ तक)

भारत में जिलादान	१६	प्रखण्डदान	६६५	ग्रामदान	९६,५४५
बिहार में	९	,,	३५८	,,	४०,७६८ कानूनी घोषित १०८
उत्तर प्रदेश में	२	,,	७९	,,	१३,२८८
तमिलनाडु में	३	,,	१३४	,,	११,६२३
मध्य प्रदेश में	२	,,	१८	,,	५,१००

संकल्पित प्रान्तदान : (१) बिहार, (२) उत्तर प्रदेश, (३) तमिलनाडु (४) उड़ासा, (५) महाराष्ट्र, (६) राजस्थान, (७) मध्यप्रदेश

विनोबा-निवास, भागलपुर —कृष्णराज मेहता

आजमगढ़ में दूसरी तहसील का दान

लालगंज तहसील के बाद अब आजमगढ़ की दूसरी तहसील सगड़ी का प्राप्ति-अभियान २७ फरवरी को पूरा हो गया। तहसील के कुल ४०४ गाँवों में से ३४६ गाँवों का दान प्राप्त हुआ।

इस प्रकार अब जिले में १,३९५ ग्रामदान हो चुके हैं। पूरी आशा है कि १५ अगस्त १९६९ तक जिलादान की मंजिल पूरी हो जायगी।

जौनपुर (उ० प्र०) में ग्रामदान अभियान

जौनपुर में पहली बार बड़े पैमाने पर ग्रामदान-अभियान का आयोजन किया गया। ६, ७ मार्च को चन्दवक में हुए प्रशिक्षण-शिविर में भाग लेने के बाद कार्यकर्ता ११ टोलियों में बँटकर डोभी प्रखण्ड की ११ न्याय-पंचायतों में ग्रामदान-प्राप्ति के काम में जुट गये हैं।

अबतक प्राप्त सूचना के अनुसार क्षेत्र के पुराने निष्ठावान कार्यकर्ता श्री ध्रुवनाथ चौबे का दुधोड़ा गाँव सबसे पहले ग्रामदान में प्राप्त हुआ। अभियान का संयोजन सर्वश्री रामजी भाई, दलजीत भाई, रामनारायण चौबे आदि कर रहे हैं।

—मेवालाल गोस्वामी

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

www.vinoba.in

गाँवकी बात

विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम् । – अथर्ववेद

इस गाँव में स्वस्थ और परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो।

विनोबा

इस अंक में

अब किसे भेजें ?
झगड़े निपटाकर गले मिले
धरती माँ से जितना माँगो उतना देगी
मैं तो अपनी 'सोना' के लिए 'सोहर' गाऊँगी ही !
आम के रोग
ग्राम-स्वराज्य के पहले और बाद (बाल-गीत)
माँ, मैं कहाँ से आया ?

२४ मार्च, '६९
वर्ष ३, अंक १५] [१८ पैसे

अब किसे भेजें ?

प्रश्न : जब चुनाव का समय आता है तो कुछ उम्मीदवार दलों की ओर से खड़े किये जाते हैं, और कुछ निर्दलीय होते हैं। यही हाल हम लोग स्वराज्य के बाद से लेकर आज तक देखते आ रहे हैं। सन् १९६७ में हम लोगों ने सोचा कि कांग्रेस की जगह उसके विरोधी दलों के लोग सरकार में जायँ तो शायद शासन अच्छा हो और हम लोगों की तकलीफें दूर हों। बड़ा उत्साह था हम लोगों में, और हुआ भी यही कि कांग्रेस हारी और विरोधी जीते। विरोधियों की मिली-जुली सरकार भी बनी। कुछ दिन तक चली भी, लेकिन फिर चल नहीं सकी। जितने दिन चली उसमें हम लोगों ने कोई ऐसा काम नहीं देखा, जिससे भरोसा होता कि आगे कोई खास काम हो सकेगा। अन्त में आपसी झगड़े के कारण संविद सरकार टूट गयी, और राष्ट्रपति का शासन लागू हो गया। राष्ट्रपति के शासन में भी कोई सुधार नहीं हुआ। राष्ट्रपति का शासन चलता भी कितने दिन ? फरवरी १९६९ में मध्यावधि चुनाव हुआ। चुनाव के बाद नयी सरकारें बनी हैं, लेकिन क्या ठिकाना है कि कौन सरकार कितने दिन चलेगी ? आपका क्या विचार है ?

उत्तर : क्या बताया जाय, हमारे देश की राजनीति ऐसी हो गयी है कि किस वक्त क्या होगा, कहना कठिन है। जो लोग आपके वोट से चुनकर जाते हैं उनके दिमाग में गद्दी के सिवाय दूसरा कुछ रहता नहीं। हर वक्त उनका मन इसीमें लगा रहता है कि किसी तरह मिनिस्ट्री मिल जाय, या कोई बड़ा ओहदा मिल जाय। गद्दी के चक्कर में वे एक दल छोड़कर दूसरे में मिलने को तैयार बैठे रहते हैं। जो नेता ज्यादा कीमत दे सकता है वह मेंबरों को 'खरीद' लेता है। बहुत कम लोग हैं जो इस खरीद-बिक्री से अलग रहते हों। ऐसी हालत में कौन सरकार कितने दिन चलेगी, यह कहना मुश्किल है।...

प्रश्न : हम गाँव के मेहनत करनेवाले लोग हैं, किसी तरह कमाते-खाते हैं। हम लोग यह देख रहे हैं कि सरकार चाहे जिसकी हो, हमारे लिए एक सरकार और दूसरी सरकार में जैसे कोई अन्तर ही नहीं रह गया है। एक सरकार जाये, दूसरी आये, न घूस में कमी पड़ती है, और न किसी काम में आसानी होती है। किसी सरकारी दफ्तर में काम करा लेना आसान नहीं है, सरकार चाहे जिसकी हो। एक दूसरी बात है जो इससे कहीं अधिक भयंकर है। वह यह है कि सरकार में ही नहीं, हम लोगों के गाँव-गाँव में राजनीति का बोलबाला हो गया है। ऐसा लगता है कि अब गाँव में रहना मुश्किल हो जायगा। न आपसदारी रह गयी है, और न एक-दूसरे के सुख-दुःख में शरीक होने की बात ही रह गयी है। बस, दिन-रात गुटबन्दी की कतर-ब्योंत चलती रहती है। मालिक-मजदूर, जाति-जाति, सवर्ण-अवर्ण, दल-दल, यहाँ तक कि पड़ोसी-पड़ोसी, सब एक-दूसरे के दुश्मन हो गये हैं। न जान सुरक्षित रह गयी है, न इज्जत, और न घर-बार। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता !

उत्तर : इसमें कोई शक नहीं कि बात बहुत बिगड़ गयी है। लेकिन उसका उपाय सरकार के पास नहीं है, किसी दल के पास भी नहीं है। है तो आपके ही पास है।

प्रश्न : हमारे पास है ? बताइए, हमारे पास क्या उपाय है ?

उत्तर : उपाय यही है कि इस दलबन्दी और राजनीति को दिमाग से निकाल देना पड़ेगा। उसके बारे में सोचना ही बन्द कर देना पड़ेगा।

प्रश्न : यह कैसे होगा ? ग्रामदान के बाद भी तो नहीं सूझता कि क्या करें ?

उत्तर : आपका गाँव ग्रामदान में शरीक हुआ है तब तो सूझना ही चाहिए। ग्रामदान से और कुछ हुआ हो या न हुआ हो, इतना तो हुआ ही होगा कि गाँव के अधिकांश लोग, कहीं-कहीं सब लोग ग्रामदान में शरीक हुए होंगे।

प्रश्न : हाँ, अभी इतना ही हुआ है, और कुछ नहीं।

उत्तर : ठीक है। गाँव में ऐसे कुछ लोग तो होंगे ही जो ग्रामदान के बाद का काम करना चाहते होंगे ?

प्रश्न : हाँ, हैं क्यों नहीं, लेकिन वे यह नहीं जानते कि क्या करना चाहिए, कसे करना चाहिए।

उत्तर : तो अब यह करना चाहिए कि हर गाँव के लोग बैठकर सोचें कि अपने गाँव में कौन-कौनसे काम वे मिलकर आपस की शक्ति से कर सकते हैं। कुछ काम तो ऐसे हैं ही जिनमें आप जल्द-से-जल्द सरकार का भरोसा छोड़ सकते हैं। दूसरा काम यह करना है कि आप अभी से सोचें कि अगले चुनाव में आप अपना उम्मीदवार कैसे खड़ा करेंगे। आपके गाँव का ग्रामदान हो गया, और इसी तरह हजारों गाँवों का हुआ, लेकिन अगर सरकार में ग्रामदान के अपने आदमी नहीं गये तो ग्रामदान की क्या शक्ति प्रकट होगी ?

प्रश्न : लेकिन यह होगा कैसे ? अगर गाँव में मेल की ही शक्ति होती तो रोना किस बात का था !

उत्तर : शक्ति है; उसे जगाने की जरूरत है। आप जैसे सोचने-समझनेवाले लोग सामने आयें तो सामान्य लोग पीछे चलने को तैयार हो जायंगे। यह जाहिर है कि अब शायद ही कोई हो जिसे भरोसा हो कि राजनीति से कोई काम हो सकता है। दलबन्दी और नेतागिरी से लोगों का मन भर चुका है। क्या ऐसी बात नहीं है ?

प्रश्न : हाँ, लोग चाहते हैं कि कोई नया रास्ता निकले। क्या कोई रास्ता है ?

उत्तर : वह रास्ता यही है कि फौरन गाँव-गाँव का संगठन हो। हर छोटे-बड़े गाँव में ग्रामसभा-ग्रामस्वराज्य सभा का संगठन हो, ग्रामकोष शुरू हो, और ग्राम शांति-सेना बने। ग्रामसभा गाँव की व्यवस्था और विकास की जिम्मेदारी ले। ग्राम शांति-सेना गाँव की रक्षा करे, गाँव में शान्ति रखे। किसीको पुलिस और अदालत में न जाना पड़े। ग्रामकोष से गाँव में विकास का काम शुरू किया जाय। ग्रामसभा इस तरह काम करे कि वही गाँव की सरकार है। हाँ, इतना अन्तर होगा कि ग्रामसभा की शक्ति कानून और डंडे की शक्ति नहीं, गाँव की जनता के प्रेम की शक्ति होगी। उस शक्ति से ग्रामसभा काम करेगी। पूरे इलाके में इस तरह की ग्रामसभाएं बनाइए। ग्रामसभाएं बनाने का अभियान चलाइए। घर-घर में ग्रामस्वराज्य की बात पहुँचाइए। यह है ग्रामस्वराज्य का पहला कदम। गाँव के बाहर सरकार उन्हीं कामों के लिए होगी, जिन्हें गाँव के लोग अपनी शक्ति से नहीं कर सकते। उस सरकार को चलाने के लिए आप लोगों को अपने ही आदमी भेजने चाहिए, न कि दलों के उम्मीदवारों को।

प्रश्न : वह कैसे होगा ?

(अगले अंक में पढ़ें)

सरकार का बोझ और 'वोटर' का कंधा

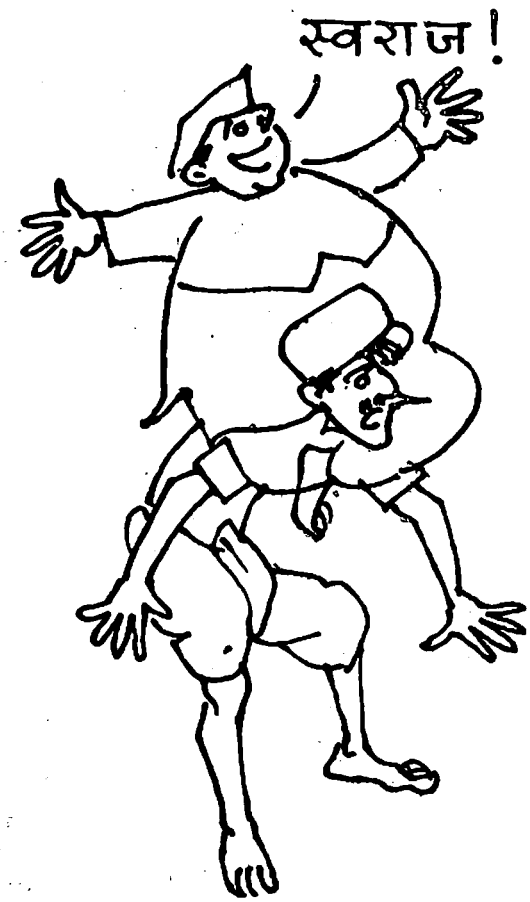

स्वराज्य के बाद से सन् १९६७ तक देश भर में कांग्रेसी राज कायम रहा

www.vinoba.in

सन् '६७ में कई राज्यों में कांग्रेसी सरकारें गिरीं, दूसरे दलों की बनीं...

नतीजा यह हुआ कि ये सरकारें भी गिरीं, और राष्ट्रपति का शासन हुआ...

...लेकिन ये मिली-जुली सरकारें आपस में ही लड़ने लगीं...

...और अब फिर सन् '६९ में मिली-जुली सरकारें बनी हैं, लेकिन कब तक चलेंगी, यह कौन कह सकता है ?

सरकार चाहे एक दल की हो या मिले-जुले दलों की हो, या सीधे राष्ट्रपति की हो, जनता यानी 'वोटर' की स्थिति में क्या फर्क पड़ता है ? उसके कंधे का बोझ तो बढ़ता ही जाता है ! यह बोझ कम कैसे होगा ?

झगड़े निपटाकर गले मिले

एक रोज ग्रामदानी गाँव के एक साथी ब्रह्मदेव यादव ग्रामदान कार्यालय बाँसडीह पर आये, और बताया कि हमारे पड़ोसी गाँव जयनगर के लोगों ने बड़ी श्रद्धा और उत्साह से ग्रामदान फार्म पर दस्तखत किया है। लेकिन आजकल इस चुनाव के समय की पार्टीबन्दी के कारण गाँव में ऐसे-ऐसे काण्ड हो रहे हैं कि कुछ समय बाद जयनगर क्षयनगर हो जानेवाला है।

गाँव का समाचार सुनकर हम बहुत ही दुःखी हुए। उसी रोज तय किया कि जयनगर चला जाय और गाँव में मेल-जोल करा दिया जाय।

बाँसडीह ग्रामदान कार्यालय से कुछ साथी जयनगर के लिए चल पड़े। रास्ते में ग्रामदान के काम में सहयोग देनेवाले दो और भी साथी आ गये। जयनगर में हम वहाँ के सभापति के दरवाजे पर पहुँचे। काफी कोशिश के बाद गाँव के लोग इकट्ठा हुए। गाँव में हर जाति के सब मिलकर लगभग ५०० घर हैं, लेकिन अधिकता कुनबी, यादव तथा क्षत्रियों की है। एकत्र हुए लोगों में प्रत्येक जाति के खास-खास लोग थे।

बैठक में सबसे पहले गाँव की परिस्थिति की जानकारी दी गयी। गाँव के काफी लोगों ने मवेशी खोलने, हरी फसल कटवाने, मार-पीट व छप्पर जलवाने आदि प्रकार के एक-दूसरे के द्वारा हुए गलत कामों की जानकारी दी।

आमने-सामने एक-दूसरे की बात कह चुकने के बाद जब गुस्सा कुछ शांत हुआ तो आपस के इन झगड़ों को निपटाने में ही सबकी भलाई है, यह बात हमने बतायी। काफी वाद-विवाद चला। लोग आपसी कलह से तंग तो थे ही, इसलिए समस्याओं को हल के लिए सर्वसम्मति से तय हुआ कि अगली १३ मार्च को फिर हम सभी लोग सार्वजनिक स्थान पर इकट्ठा हों।

१३ मार्च को जयनगर ग्रामदानी गाँव की बैठक ग्रामसभापति के दरवाजे पर हुई। पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार गाँव के ८५ व्यक्तियों की उपस्थिति रही।

दोपहर के १२ बजे से लेकर शाम के ७ बजे तक सभा चलती रही। पिछले झगड़ों को निपटाने तथा वर्तमान समस्याओं को हल करने के लिए गाँववालों के सामने कुछ सुझाव रखे गये। सर्वसम्मति से समझौते की बात तय हुई।

क्षेत्रिय ग्रामदानी गाँव के सहयोगी साथियों की कोशिश से गाँव के दोनों पक्षों के लोगों तथा निष्पक्ष व्यक्तियों के दस्तखत से लिखित समझौता हुआ। और सब लोग शंकर भगवान् के मन्दिर के सामने आपस में गले मिले और आगे किसी प्रकार की चोरी-कटाई न करने का संकल्प लिये। यदि कोई नयी समस्या पैदा होगी तो उसे ग्रामसभा के द्वारा हल करने का भी निश्चय दुहराया गया।

अंत में गाँव के लोगों ने भारतमाता और गांधी-विनोबा का जय जयकार किया, और—'गाँव हमारा है परिवार, सबकी सेवा धर्म हमार'—का नारा लगाते हुए अपने-अपने घरों को वापस लौटे।

—झिल्लू भाई, बालेश्वर प्रसाद

धरती माँ से जितना माँगो उतना देगी

कुछ दिन पूर्व मैं गांधीसागर जा रहा था। रास्ते में प्यास लगी। एक स्थान पर एक आदमी मोट चला रहा था, मोटर रोककर मैं वहीं उतर गया। उसके पास जाकर मैंने पूछा, "भाई, तुम्हारे पास कितनी भूमि है?" उसने उत्तर दिया, "चार एकड़। इसमें से ढाई-पौने तीन एकड़ में मैं खेती करता हूँ। शेष अभी आबाद होने को है।" मैंने फिर पूछा, "तुम्हारे परिवार में कितने प्राणी हैं?" उसने उत्तर दिया, "मेरी माँ, पति-पत्नी हम, दो बच्चे और गत वर्ष मेरी बहन विधवा हो गयी है, वह भी यहीं रहती है तथा उसका एक लड़का है।" मेरे यह पूछने पर कि क्या इतने से तुम्हारा काम चल जाता है, बड़े ही दृढ़ स्वर और स्वाभिमान से उस किसान ने कहा, "हाँ।" मैंने पूछा, "तुम्हें इतनी भूमि से कितना मिल जाता है?" उसने कहा, "मिलने-जुलने का हिसाब मेरे पास नहीं है, यह धरती माता है, इससे जितना माँगो वह देती है।"

—गोविन्द नारायण सिंह

मैं तो अपनी 'सोना' के लिए 'सोहर' गाऊँगी ही !

पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद नीलिमा की कोख से एक पुत्री ने जन्म लिया। बच्ची नहलाने के बाद जब सास की गोद में दी गयी तो सास की आँखें भर आयीं। उनकी पोती जैसे सोने की गुड़िया थी। बड़ी-बड़ी आँखें, पतले होंठ, रेशम जैसे घुंघराले बाल और उस पर कंचन जैसी काया देखकर पारबती के हृदय में नन्ही-मुन्नी के प्रति खूब स्नेह उमड़ आया। आसपास जुटी गाँव की औरतों की ओर मुसकराकर देखते हुए पारबती ने कहा—"हमारी सोना पाँच साल की चिरौरी-मनौती के बाद मिली है। इसकी खुशी में मैं सोहर गवाऊँगी।" नाइन चौथिया की ओर देखते हुए पारबती ने कहा—"जा, सबके यहाँ कह दे कि सोहर गाने चलना है, सब लोग जल्दी आ जायँ।" चौथिया भौचक्की होकर पारबती की ओर देखती रह गयी। फिर बोली—"मइया! लड़की के जन्म लेने पर कहीं कोई सोहर गवाता है ?"

"नहीं गवाता तो न गवाये, लेकिन मैं तो गवाऊँगी। भगवान ने सृष्टि चलाने के लिए लड़के-लड़की में कुछ शारीरिक अन्तर किया है, लेकिन अज्ञान के कारण हमने लड़के के जन्म को शुभ और लड़की के जन्म को अशुभ बात मान ली है।"

चौथिया कुछ तिलमिला उठी। बोली—"आपका सन्देश मैं घर-घर पहुँचा देती हूँ। लेकिन जो सुनेगा वही पूछेगा कि लड़की के जनमने पर कहीं सोहर गाया जाता है ?"

"तू जाकर सबके यहाँ कह दे। यह तो मालूम हो जायेगा कि कौन आता है, कौन नहीं आता। और हाँ! तू तो लौटकर आयेगी न ?"

"मइया! जबतक जिन्दगी है तबतक आपके किसी काम से मैं इनकार नहीं कर सकती।"

चौथिया के चले जाने के बाद पारबती नन्ही सोना को नीलिमा के बगल में लिटाने के लिए ले गयी। सास की बातें नीलिमा ने सुन ली थीं, इसलिए पारबती जब बच्ची को लेकर सुलाने आयी तो लेटे-लेटे ही नीलिमा ने अपने हाथ बढ़ाकर पारबती के पाँव छू लिये। आँखें छलछला आयीं और वह रो पड़ी।

पारबती ने नीलिमा के माथे पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"पगली! देख मैं कितनी खुश हूँ और तू रो रही है !!"

"माँजी! आप खुश हैं यह आपकी कृपा है, लेकिन ...!"

लेकिन कहने के बाद नीलिमा का गला भर आया।

पारबती ने बहू का मुँह अपने सामने करते हुए कुछ मुसकराकर पूछा—"तू कुछ कहते-कहते रुक क्यों गयी ?"

"माँजी! यह लड़की की जगह लड़का होती तो आज कितना अन्तर होता !"

पारबती ने जरा कड़ी आवाज में कहा—"अन्तर तो होता ही, लेकिन औरों के लिए। मेरे लिए हर्गिज नहीं।"

"माँ जी! आप ठीक कहती हैं, लेकिन अपनी तबियत को क्या कहूँ। पाँच साल के बाद यह बच्ची आयी है, इसलिए आप लोग खुश हैं। यह बच्चा होती तो आज आपके पाँवों में पंख लग गये होते।"

"तू चाहे जो कह और मान, लेकिन मैं ऐसा नहीं मानती। मैं अपनी सोना के लिए सोहर जरूर गवाऊँगी। सब पट्टीदारिनें भले ही न आयें, लेकिन मुखियाइन और ४-६ दूसरी बहुएँ तो जरूर आयेंगी। और कोई नहीं आया तो भी देख लेना, मैं चुप बैठनेवाली नहीं हूँ।"

पारबती के पाँव में पंख नहीं लगे थे यह बात कुछ हद तक ठीक थी, लेकिन पारबती ने जीवन में कोई काम सिर्फ दूसरों की देखादेखी नहीं किया था। हर काम और रीति-रीवाज को वह अच्छाई और विवेक की कसौटी पर कसकर परखने की अभ्यासी है। उसके बेटे के ब्याह की जब बातें चल रही थीं तो विवेक के साथ सोच-विचार करके ही उसने नीलिमा को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करने का फसला किया था। नीलिमा रंग की साँवली, लेकिन शरीर से तन्दुरुस्त और स्वभाव की मेहनती लड़की थी। बेटे का मन टटोलने के लिए उसने कई बार पूछा था—"लल्लू, तेरे पसन्द की बहू कैसी होगी ?"

"अम्मा, तुम्हारी बहू में दो बातें तो जरूर होनी चाहिए—पहली यह कि वह स्वभाव से मेहनत-पसन्द हो, दूसरी यह कि हँसमुख हो। बात-बात में पिनकने या मुँह फुलाये रखनेवाली लड़की से मेरी नहीं निभेगी।" लल्लू ने दो टूक बात कही थी।

अपने पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन में नीलिमा ने सभी जिम्मेदारियाँ अच्छी तरह निभायीं और वही नीलिमा अपनी कोख से बच्ची पैदा होने की कसक से सिसक उठी थी। पारबती ने मन ही मन तय कर लिया कि वह बेटी और बेटे में भेदभाव माननेवाले रिवाज को नहीं मानेगी, क्योंकि इसमें मातृ जाति का अपमान है। इसी भावना से पारबती ने अकेली ही अपनी पूरी आवाज में जैसे ही सोहर कढ़ाया कि पास-पड़ोस की औरतें आँधी के झोंके की तरह उसकी दालान में उमड़ पड़ीं।

—त्रिशंकु

आम के रोग

आम का तनाछेदक—गिडार या मँगरा

पहचान—प्रौढ़ कीड़े कड़े भूरे रंग के लगभग ३६ से ६० मिलीमिटर (१½ से २½ इंच) लम्बे होते हैं। इनकी पीठ पर बहुत-से टेढ़े-मेढ़े मक्खन जैसे सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। प्रारम्भ में मक्षी-जातक लगभग १२ मिलीमीटर (आधा इंच) लम्बे होते हैं। मक्षी-जातक ही पेड़ों के तनों को काटते हैं। विकसित मक्षी-जातक का सिर काला, शरीर गंदले रंग का और जबड़ा बहुत पुष्ट होता है। ये पैर-विहीन और लगभग ८० से १०० मिलीमिटर (१ से ४ इंच) लम्बे होते हैं।

जीवन-चक्र—प्रौढ़ मादा सूखे या पुराने पेड़ों के तनों की दरारों में एक-एक करके अण्डे देती है। अण्डों से ७ से १४ दिन के बाद मक्षी-जातक निकलते हैं और तनों के चारों ओर छेद करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। मक्षी-जातक ४ से ८ महीने के बाद पूर्ण विकसित हो जाते हैं और तने में ही ४ से ६ सप्ताह तक कोषावस्था में बदल जाते हैं। मई से अगस्त (वैशाख से भादो) तक ये कीड़े प्रौढ़ावस्था में निकलते हैं और संयुजन करके वंशवृद्धि करते हैं। प्रौढ़ प्रकाश-प्रेमी होते हैं और रात को बत्तियों पर आते हैं। प्रौढ़ आम की कंछियों को खाकर जीवित रहते हैं। एक वर्ष में इनकी एक ही पीढ़ी होती है।

आक्रमण-काल—आम एवं अन्य पेड़ों पर इनका आक्रमण वर्षभर विभिन्न अवस्थाओं में होता रहता है।

पोषक पौधे—ये आम, तूत, कटहल, सेमर, रबर और अंजीर से पोषण प्राप्त करते हैं।

प्रसार—भारत में ये भोपाल, बम्बई, हैदराबाद, मैसूर प्रदेशों में अत्यधिक पाये जाते हैं।

क्षति—ये आम के विनाशकारी कीड़े हैं। इनके मक्षी-जातक तनों में घुसकर इधर-उधर काटते हुए नालियाँ बनाते हैं, जिससे तने बहुत कमजोर हो जाते हैं। यदि आक्रमण अधिक हुआ, तो डाली या पेड़ टूटकर गिर जाते हैं। कभी-कभी तो इनका आक्रमण पेड़ की जड़ के पास भी होता है। ऐसे पेड़ों के तनों से स्थान-स्थान पर से इन कीड़ों की काली-काली टट्टियाँ निकलती दीख पड़ती हैं।

रोक-थाम—सूखी डाली एवं तनों को काटकर जला देना चाहिए, जिससे उस डाल के अन्दर के कीड़े नष्ट हो जायँ।

दमन—(१) रोगी तनों एवं बड़ी टहनियों में एक-एक भाग क्लोरोफार्म क्रियोजोट आयल तथा कार्बन बाई सल्फाइड को मिलाकर रूई में भिगोकर या पिचकारी से उन नलियों में, जिनसे काली-काली टट्टियाँ निकलती हो, दवा डालकर उसके छेद को मिट्टी से भर देना चाहिए। दूसरे दिन फिर जब किसी दूसरी नली से ताजी टट्टी दिखाई दे, तब उसे फिर उपर्युक्त दवा से भरकर मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।

(२) रोगी पेड़ों के छेदों को २ प्रतिशत नमक का घोल या मिट्टी का तेल या मशीन का खराब तेल सुई के द्वारा भरने से अधिक लाभ होता है।

(३) मई-जून में (वैशाख से ज्येष्ठ-आषाढ़ तक) इनके प्रौढ़ पेड़ों की डालियों के बीच या पुराने पेड़ों के खोखलों में पाये जाते हैं। इन्हें सुबह या शाम को चिमटे से पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

पतरकट्टी

पहचान—यह कीड़ा भूरे रंग का छोटा होता है। इसका ऊपरी पंख चमकीले रंग का तथा मुख लम्बा थूथन जैसा भूरे रंग का होता है। इसका लम्बाई लगभग ६ मिलीमीटर (चौथाई इंच) होती है।

जीवन-चक्र—मादा पत्तियों की रीढ़ की नसों में, बेलनाकार सफेद अण्डे घुसेड़ देती है और उस पत्ती को काटकर धरती पर गिरा देती है। अण्डों से दो-तीन दिनों बाद मक्षी-जातक निकलते हैं और कोमल पल्लवों को काट-काटकर खाते हैं। लगभग एक सप्ताह के बाद मक्षी-जातक मटमैले रंग के हो जाते हैं और मिट्टी में घुसकर कोषावस्था में बदल जाते हैं। दूसरे वर्ष जब वर्षा शुरू होती है, तब ये प्रौढ़ावस्था में निकलते हैं। प्रौढ़ भी नई पत्तियों को काटकर खाते हैं। एक वर्ष में इनकी एक ही पीढ़ी होती है।

आक्रमण-काल—इनका आक्रमण अगस्त (श्रावण) के अंतिम सप्ताह से अक्तूबर (क्वार) तक होता है।

पोषक पौधे—आम।

प्रसार—ये भारत में आम उत्पन्न होनेवाले क्षेत्रों में सर्वत्र पाये जाते हैं, विशेषकर बम्बई, बिहार, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में।

क्षति—नये आम के पेड़ों को इन कीड़ों से अधिक हानि होती है। ये कीड़े आम की पत्तियों के डंठलों को बहुत सफाई से काट देते हैं। आक्रमण अधिक होने पर बहुत-से नये पल्लव आम के→

बच्चों की बगिया

www.vinoba.in

['गाँव की बात' के ग्रामीण पाठकों के सुझाव पर हम इस अंक से ग्रामीण बच्चों के लिए सुलभ गीत और कविताओं का प्रकाशन शुरू कर रहे हैं। आशा है, पाठकों को यह रुचिकर लगेगा । —सं०]

ग्राम-स्वराज्य से पहले

मेरा प्यारा प्यारा गाँव।
रोता है बेचारा गाँव॥

तरह-तरह के फैले रोग।
दर-दर फिरते भूखे लोग॥
बैठे हैं दिन भर बेकार।
सूना है सबका घर-बार॥

ग्राम-स्वराज्य के बाद

मेरा प्यारा प्यारा गाँव।
सारे जग से न्यारा गाँव॥

कहीं फूस के छाये छप्पर।
ताल-तलैया, मन्दिर, पोखर॥
कहीं पकी है जामुन काली।
फल से लदी आम की डाली॥

× × ×

मेरा गाँव बड़ा अलबेला।
मैं इसकी मिट्टी में खेला॥

पंचायत-घर, बाग-बगीचे।
भींट, पोखरे, ऊँचे-नीचे॥
घास-फूस के सुन्दर छप्पर।
चिड़ियाँ रोज चहकती उन पर॥

खेतों में फसलों का मेला।
मेरा गाँव बड़ा अलबेला॥

—रुद्रमान

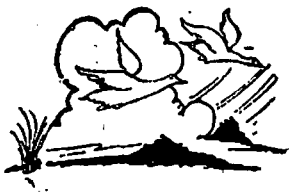

→पेड़ों के नीचे गिरे हुए दिखाई देते हैं। आम हमेशा नये पल्लवों में ही फलता है, किन्तु ये कीड़े उन पल्लवों को पहले ही काट देते हैं, जिससे आम लग ही नहीं पाता है। नये आम को इनसे कभी-कभी ३० से ३५ प्रतिशत तक क्षति हो जाती है।

रोक-थाम—बगीचों को नवम्बर-दिसम्बर (कार्तिक से पौष तक) में मिट्टी उलटनेवाले हल से जोत देना चाहिए, जिससे कोषावस्था के कीड़े धरती के ऊपर आकर नष्ट हो जायँ।

दमन—पेड़ों के नीचे पड़ी हुई रोगी पत्तियों को चुनकर नष्ट कर देना चाहिए, जिससे भविष्य में आक्रमण न होने पाये।

—शैलेन्द्र कुमार 'निर्मल'

पालक और बालक

माँ, मैं कहाँ से आया ?

मुन्ना चार बरस का था। एक दिन बेचारे ने माँ से पूछ लिया, "माँ, मैं कहाँ से आया ?" माँ कुछ काम कर रही थी। उसने झपटकर मुन्ना को डाँट दिया, "इतने छोटे बच्चे को इससे क्या मतलब ?" इसी तरह एक दिन बगल के मकान की माँ को अपनी बच्ची से कहते हुए सुना, "अभी तू नहीं समझेगी, जब बड़ी हो जायेगी तो खुद समझ जायेगी !" भला कैसा लगा होगा इन बालकों को ? उनके सवालों का जवाब तो मिला ही नहीं, बल्कि उसके पीछे एक अजीब भाव आ गया। मन में बेचारे बालकों ने सोचा होगा, "शायद इसके पीछे कुछ रहस्य होगा !"

एक अवस्था तक तो बालक यही सोचता है कि माँ उसे कहीं से उठाकर ले आयी या शायद बाजार से लायी। किन्तु जब पड़ोसी के घर में बच्चा आया तो यह प्रश्न फिर उठता है कि वह कहाँ से आया ? फिर जब बालक की अपनी छोटी बहन या भाई होनेवाला होता है तो सवाल और भी कठिन हो जाता है। "माँ के पेट में छोटी बहन या भाई है, मैं भी माँ के पेट में था !" इस तरह की जानकारी पाकर जिज्ञासा और बढ़ती जाती है, "माँ, मैं पेट में कहाँ से आया ?"

इधर 'आधुनिक शिक्षण-शास्त्र' यह कहने लगा था कि बालक की जिज्ञासा को पूरा-पूरा तृप्ति कर देना चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि बालक की जिज्ञासा-वृत्ति का लाभ उठाकर उसे और भी वैज्ञानिक जानकारी देनी चाहिए। इस 'सद्-भावना' के कारण अनेक पढ़े-लिखे माता-पिता और शिक्षक भयानक गलतियाँ कर बैठते हैं। जब 'वैज्ञानिक' बारीकियों में जाकर बालक को शिशु-जन्म की बात बात बताने बैठते हैं, तो बहुत आदर्शवाद के बावजूद भी बालक को वही बातें बता डालते हैं, जो बालक को उसके वे साथी बतायेंगे जो 'बदमाश-शैतान, बिगड़े हुए लड़के-लड़कियाँ' कहलाते हैं।

श्री मेकेरेंकी नामक एक लेखक ने अपनी "माता-पिताओं के लिए एक पुस्तक" में एक किस्से का वर्णन किया है, कि एक पिता ने अपने ५ वर्ष के पुत्र के इस सवाल का माकूल जवाब देने और उसकी जिज्ञासा पूरी करने के लिए उसकी माता को शिशु-जन्म देते हुए दिखाया। कितना भयानक अनुभव हुआ होगा, उस नन्हें-से बच्चे को !

यह हुई एक हद। और दूसरी हद है, जिसका पहले ही जिक्र किया गया—'बालक को जवाब देने के बदले डाँट-फटकार कर चुप कर देना।'

आजकल के ज्ञानी शिक्षाशास्त्री कहते हैं कि बच्चे के इस प्रश्न का उतना ही उत्तर दो जितना कि उसने पूछा है। यानी उसे खींच-तानकर उससे अधिक बताने का प्रयत्न न करो। यह भी कठिन चीज है, क्योंकि कितना बताना, यह तय करना क्या आसान है ? चार वर्ष का चुन्नू जो प्रश्न पूछ रहा है वह क्या छोटा प्रश्न है ? "माँ, मैं कहाँ से आया ?" कितना बड़ा प्रश्न है यह ! बड़े-बड़े दार्शनिक भी उसका उत्तर नहीं दे पाये।

हम इस प्रश्न का एक उत्तर आपके सामने रखना चाहते हैं, जिसे हमने अपने-आप सुना और देखा है। इसका यह मतलब नहीं कि हर माता-पिता और शिक्षक इस उत्तर को अपना नमूना समझें और हमेशा इस तरह के मौके पर इसका उपयोग कर लें। उसे तो समझना है उसकी भावना को। उसके पीछे जो चीज है वह वैज्ञानिक जानकारी नहीं है। उनके पीछे उस प्रेम और मानवीय सम्बन्ध का चित्र है जो शिक्षा का आदर्श है, शिक्षा का उद्देश्य है।

एक माता दोपहर में बैठी शाम के भोजन के लिए भाजी काट रही थी। साढ़े चार साल का नन्दू, जो शाला छूटने के बाद अभी तक अन्य बालकों के साथ खेल रहा था, आया। गम्भीर आवाज में उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ, रामलाल है न, वह कहता है कि मैं तुम्हारे पेट में था। माँ, मैं तुम्हारे पेट में कहाँ से आया ?" माँ का हृदय स्नेह से लबालब भर गया और उसने बड़ी गम्भीर, पर प्रेमभरी आवाज से नन्दू को कहा, "तुझे मैंने बहुत दिनों तक भगवान की प्रार्थना करके पाया !"

नन्दू को प्रश्न का उत्तर ही केवल नहीं मिला, उसे माँ के हृदय में एक बार और गोता लगाने का मौका मिल गया। वह माँ के कन्धे पर चढ़ गया और उसने अपने कोमल शरीर और मन से माँ को प्यार से भर दिया, "माँ, तू मुझे इसीलिए तो इतना प्यार करती है न ?" एक सामान्य स्त्री न तो बाल-मनोविज्ञान की बातों से परिचित है, और न बहुत पढ़ी-लिखी ही है। लेकिन कितना माकूल जवाब है ?

—देवी प्रसाद

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे

सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१